प्रकाशन हेतु अनुमोदित

<u>छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर</u>

(माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रितिंकर दिवाकर)

विविध दाण्डिक याचिका क्रमांक: 43/2008

याचिकाकर्ता: एस. पी. डंगवाल

बनाम

उत्तरवादीगण : उमेश चौबे एवं अन्य

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

आदेश की उद्घोषणा हेतु 23.8.2010 को सूचीबद्ध करे।

सही /-

प्रितिंकर दिवाकर

न्यायाधीश

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर

(माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रितिंकर दिवाकर)

विविध दाण्डिक याचिका क्रमांक: 43/2008

याचिकाकर्ता: एस. पी. डंगवाल

बनाम

उत्तरवादीगण : उमेश चौबे एवं अन्य

याचिकाकर्ता की ओर से श्री रणबीर सिंह, अधिवक्ता।

उत्तरवादी क्रमांक 1 की ओर से श्री मनीष शर्मा, अधिवक्ता।

उत्तरवादी क्रमांक 2 की ओर से श्री प्रवीण दास, उप शासकीय अधिवक्ता ।

उत्तरवादी क्रमांक 3 की ओर से कोई नहीं।

उत्तरवादी क्रमांक 4 और 5 की ओर से श्री सचिन सिंह राजपूत, अधिवक्ता।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत याचिका।

आदेश

(27.08.2010)

1. प्रस्तुत याचिका अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, रायपुर के न्यायालय में लंबित दाण्डिक परिवाद प्रकरण क्रमांक 1304/2004 में धारा 167, 189/34 भारतीय दंड संहिता के तहत अपराधों से संबंधित दाण्डिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए दायर की गई है।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह है कि 15.12.2000 को उत्तरवादी क्रमांक 1 उमेश चौबे ने याचिकाकर्ता और उत्तरवादी क्रमांक 3 से 5 के खिलाफ धारा 420, 467, 468, 218, 120-बी, 471, 167, 211 सहपठित धारा 34 भारतीय दंड संहिता के तहत एक परिवाद दायर किया था।

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

परिवादी ने तर्क प्रस्तुत किया है कि वह तत्कालीन मध्य प्रदेश राज्य विद्युत मंडल के सेवानिवृत्त कार्यपालन अभियंता हैं। 22.3.1999 को उनके खिलाफ विशेष न्यायालय, रायपुर के समक्ष भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(1)(e) के तहत आरोप पत्र दायर किया गया था। उक्त आरोप पत्र को याचिकाकर्ता ने मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष M.Cr.C.क्रमांक 3532/1999 के माध्यम से चुनौती दी थी, और उक्त याचिका को मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने दिनांक 21.09.1999 के आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया था और आरोप पत्र रद्द कर दिया गया था। परिवादी के अनुसार, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के तहत उनके खिलाफ दर्ज किया गया प्रकरण और उसमें दायर किया गया आरोप पूरी तरह से झूठा और मनगढ़ंत था, जिसमें कुछ दस्तावेज कूटरचित थे। उन्होंने तर्क प्रस्तुत किया कि उनके घर के निर्माण में उपयोग की गई लकड़ी का माप गलत तरीके से किया गया था, ताकि उनके खिलाफ आय से अधिक संपत्ति का प्रकरण बनाया जा सके।यह आरोप है कि उक्त दस्तावेज आरोप क्रमांक 1 एस. के. एस. बिसेन (इस न्यायालय के समक्ष उत्तरवादी क्रमांक 3) द्वारा तैयार किया गया था, और यह उन्हें नुकसान पहुंचाने के आशय से किया गया था। आरोप क्रमांक 2 (जी.आर. बंजारे - इस न्यायालय के समक्ष उत्तरवादी क्रमांक 4) के खिलाफ आरोप है कि मूल्यांकन के संबंध में अभिलेख का सत्यापन किए बिना उक्त दस्तावेज आरोप पत्र के साथ दायर किया गया था, और यह एक अवैध और असंवैधानिक कार्य है तथा उन्हें झूठे प्रकरण में फंसाने के लिए वास्तविक स्थिति को इस न्यायालय के समक्ष दबाया गया है। याचिकाकर्ता के संबंध में आरोप है कि संस्था का प्रमुख होने के नाते निष्पक्ष और विधिपूर्वक विवेचना करना उनकी जिम्मेदारी थी, और उन्हें दस्तावेजों का सूक्ष्म परीक्षण करना चाहिए था, और उसके बाद ही उनकी तरफ से मंजूरी दी जानी चाहिए थी।यह आरोप है कि वह भी परिवादी को नुकसान पहुंचाने और बदनाम करने की साजिश में शामिल थे, जिससे उन्हें कई वर्षों तक मानसिक प्रताड़ना झेलनी पड़ी।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

सी. एस. अंब (यहाँ उत्तरवादी क्रमांक 5) के संबंध में आरोप है कि सुसंगत समय पर वे पुलिस अधीक्षक के रूप में कार्यरत थे और यहाँ उत्तरवादी क्रमांक 3 और 4 के नियंत्रक प्राधिकारी थे। यह आरोप है कि उनके निर्देश पर 7.5.1996 को अवैध छापा मारा गया और उनकी सहमति से परिवादी को नुकसान पहुंचाने के लिए झूठे और मनगढ़ंत दस्तावेज तैयार किए गए, और इसलिए वह भी इस प्रकरण में शामिल हैं।

3. अपने प्रकरण के समर्थन में परिवादी का कथन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 200 के तहत30.08.2001 को (इस न्यायालय के समक्ष अतिरिक्त दस्तावेज़ -बी) दर्ज किया गया था और

राकेश चतुर्वेदी तथा सुरेंद्र कुमार पाणिग्रही के कथन भी दर्ज किए गए थे। परिवादी ने अपने कथन के पैरा-7 में विस्तार से कहा है कि अन्य पुलिस अधिकारियों द्वारा तैयार किए गए कूटरचित दस्तावेज वर्तमान याचिकाकर्ता को भेजे गए थे, जो पुलिस महानिदेशक के रूप में कार्यरत थे, और यह याचिकाकर्ता के संज्ञान में था, फिर भी अन्य अधिकारियों के साथ मिलीभगत करके चालान दाखिल करने की मंजूरी देने का निर्णय लिया गया, इसलिए याचिकाकर्ता को अभियोजित करने का निर्णय लिया गया। अन्य दो गवाह, अर्थात् राकेश चतुर्वेदी और सुरेंद्र कुमार पाणिग्रही, ने कहा है कि अधिकारियों द्वारा मूल्यांकन सही ढंग से नहीं किया गया था और जब परिवादी के घर पर छापा मारा गया, तो कुछ तकनीकी खामियां थीं और माप भी सही नहीं की गई थी।

4. श्री रणबीर सिंह ने तर्क दिया है कि यदि पुरे परिवाद और परिवादी तथा उनके गवाहों के कथन को उनके स्वरूप में मान भी लिया जाए, तो भी याचिकाकर्ता के खिलाफ धारा 167 और 189/34 भा. दं. सं. के तहत अपराध का गठन नहीं होता । उनका कहना है कि यह स्वीकार किया जाता है कि सुसंगत समय पर वर्तमान याचिकाकर्ता महानिदेशक, विशेष पुलिस स्थापना, भोपाल थे, और उनके द्वारा निभाई गई एकमात्र भूमिका यह थी कि उन्होंने 18.03.1999 को तत्कालीन लोकायुक्त को नोट शीट अग्रेषित की थी, जिसमें वे टिप्पणियाँ थीं जिनका उल्लेख इस याचिका के साथ 27.07.2010 को दायर किए गए अतिरिक्त दस्तावेज़ में किया गया है, जिसे बाद में निर्देशित किया जाएगा। उनका कहना है कि परिवादी को अभियोजित करने या उनके खिलाफ चालान दाखिल करने के लिए याचिकाकर्ता द्वारा कोई मंजूरी नहीं दी गई थी, और अंततः निर्णय तत्कालीन लोकायुक्त द्वारा लिया गया था। उन्होंने लोकायुक्त की नोट शीट का हवाला दिया, जो इस प्रकार है:

"श्री शाह की राय और प्रकरण में मेरे अपने निर्णय को ध्यान में रखते हुए, प्रस्तावित चालान प्रस्तुत किया जा सकता है।"

- वह आगे तर्क प्रस्तुत करते हैं कि लोकायुक्त ने भी विधिक सलाहकार, अर्थात् डब्ल्यू.ए. शाह, से अभिमत लेने के बाद परिवादी के खिलाफ चालान दाखिल करने की अनुमति दी थी, और इसलिए याचिकाकर्ता को किसी भी चीज़ के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता। वह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि परिवादी /उत्तरवादी क्रमांक 1 की याचिका, अर्थात् विविध दाण्डिक प्रकरण क्रमांक 3532/1999, को मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 21.09.1999 के आदेश से केवल इस तकनीकी आधार पर स्वीकार किया गया था कि पुलिस अधीक्षक ने पुलिस उपाधीक्षक को विवेचना करने का कोई

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

अधिकार नहीं दिया था, जैसा कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 17 के तहत आवश्यक है। उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान इस याचिका के साथ दायर किए गए अनुलग्नक पी-3 की ओर आकर्षित किया। वह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि आरोप पत्र को रद्द करते हुए भी, उच्च न्यायालय ने अवलोकन किया था कि: *"इन टिप्पणियों के साथ यह याचिका स्वीकार की जाती है और अभियोजन को इस स्तर पर रद्द किया जाता है। लेकिन, यह न्यायालय वर्तमान प्रकरण में प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द नहीं कर रहा है।"* वह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि याचिकाकर्ता का प्रकरण सर्वोच्च न्यायालय के **हरियाणा राज्य और अन्य बनाम चौधरी भजन लाल और अन्य 1992 सी आर एल जे 527 में प्रकाशित** के निर्णय के पैरा 102 के दृष्टान्त 1, 3 और 7 से पूरी तरह से आच्छादित है और जो इस प्रकार है:

> (1) जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट या परिवाद में लगाए गए आरोप , यदि उन्हें पूरी तरह से उसी रूप में लिया जाए और, तो भी आरोपी के खिलाफ प्रथम दृष्टया कोई अपराध गठित नहीं होता कोई प्रकरण नहीं बनता।
>
> (3) जहाँ प्रथम सुचना रिपोर्ट या परिवाद में लगाए गए निर्विवाद आरोप और उसके समर्थन में एकत्र किए गए सबूत किसी अपराध के कारित किये जाने का खुलासा नहीं करते और आरोप के खिलाफ कोई प्रकरण नहीं बनता।
>
> (7) जहाँ दाण्डिक कार्यवाही स्पष्ट रूप से दुर्भावनापूर्ण है और/या जहाँ कार्यवाही प्रतिशोध लेने के हेतुक से और निजी व व्यक्तिगत द्वेष के कारण आरोप को परेशान करने की दृष्टि से दुर्भावनापूर्ण तरीके से शुरू की गई है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

5. याचिका की पोषणीयता पर: दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत याचिका की आड़ में द्वितीय पुनरीक्षण दायर किए जाने के आधार पर उत्तरवादी क्रमांक 1 द्वारा उठाए गए आपत्ति के संबंध में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि सर्वोच्च न्यायालय के **कृष्णन और अन्य बनाम कृष्णादेवी और अन्य (1997) 4 SCC 241** , के मद्देनजर वर्तमान याचिका बिल्कुल विचारणीय है। उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय के **शकुंतला देवी और अन्य बनाम चमरू महतो और अन्य (2009) 3 SCC 310** का भी अवलम्ब लिया है । सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य निर्णय, **सोम मित्तल बनाम भारत सरकार, (2008) 3 SCC 753** का भी अवलम्ब लिया है। इसके अलावा, सोम मित्तल बनाम भारत सरकार के मामले में सुप्रीम कोर्ट के निर्णय अवलंब लिया गया है, जो (2008) 3 SCC 574 में प्रतिवेदित है।

6. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता तर्क प्रस्तुत करते हैं कि पहले याचिकाकर्ता ने मजिस्ट्रेट के दिनांक 11.10.2004 के आदेश को चुनौती देते हुए एक पुनरीक्षण याचिका दायर की थी (अनुलग्नक पी-6 के माध्यम से), लेकिन उसे 27.11.2007 को (अनुलग्नक पी-7) परिसीमा के आधार पर खारिज कर दिया गया था, क्योंकि मजिस्ट्रेट के आदेश को लगभग एक साल और दस महीने बाद चुनौती दी गई थी। वह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि गुण-दोष के आधार पर न्यायालय द्वारा कोई निर्णय नहीं लिया गया था, और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत एक याचिका में, यह न्यायालय परिवाद प्रकरण की वैधता और क्या कार्यवाही जारी रखने की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा या नहीं, यह तय करने से वंचित नहीं है। वह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि अन्यथा भी, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अंतर्निहित श **हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य** (पूर्वोक्त) के प्रकरण को देखते हुए।

7. उत्तरवादी क्रमांक 1 के अधिवक्ता के इस तर्क का जवाब देते हुए कि याचिकाकर्ता के पास दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 245 (2) के तहत वैकल्पिक उपचार है, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया है कि सर्वोच्च न्यायालय के **जी. सागर सूरी और अन्य बनाम यू.पी. राज्य और अन्य , जो (2000) 2 SCC 636** के मद्देनजर यह याचिका विचारणीय है। उक्त निर्णय का सुसंगत अंश इस प्रकार है :-

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

> "7. श्री ललित, द्वितीय उत्तरवादी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ताओं ने पहले ही अतिरिक्त न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय में अपने उन्मोचन किये जाने के लिए एक आवेदन दायर कर दिया है और यह न्यायालय दाण्डिक कार्यवाही में हस्तक्षेप नहीं करेगा, जो शुरूआती चरण में है।हम नहीं सोचते कि उन्मोचन के लिए कोई आवेदन दाखिल करने पर, उच्च न्यायालय संहिता की धारा 482 के तहत अपने अधिकारित का प्रयोग नहीं कर सकता।इस संबंध में, पेप्सी फूड्स लिमिटेड बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट और अशोक चतुर्वेदी बनाम शीतल एच. चांचनी में इस न्यायालय के दो निर्णयों का संदर्भ लिया जा सकता है, जिसमें विशेष रूप से यह माना गया है कि यद्यपि किसी प्रकरण की सुनवाई कर रहे मजिस्ट्रेट के पास प्रकरण के किसी भी चरण में आरोप को उन्मोचित करने का अधिकारिता होता है, यदि वह आरोप को निराधार मानता है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि

आरोप उच्च न्यायालय के समक्ष संहिता की धारा 482 या संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत कार्यवाही को रद्द कराने के लिए संपर्क नहीं कर सकता, जब उनके खिलाफ कोई अपराध नहीं बनता है और फिर भी उन्हें दाण्डिक प्रकरण की पीड़ा से क्यों गुजरना पड़े।

8. संहिता की धारा 482 के तहत अधिकारिता का प्रयोग बड़ी सावधानी से किया जाना है। अपने अधिकारिता के प्रयोग में उच्च न्यायालय को प्रकरण की सतही तौर पर विवेचना नहीं करनी है। यह देखा जाना है कि क्या कोई प्रकरण, जो अनिवार्य रूप से सिविल प्रकृति का है, उसे दाण्डिक प्रकरण का रूप दिया जा रहा है। दाण्डिक कार्यवाही अन्य उपचारों का शॉर्टकट नहीं है। प्रक्रिया जारी करने से पहले एक दाण्डिक न्यायालय को बड़ी सावधानी बरतनी होती है। आरोप के लिए यह एक गंभीर प्रकरण है। इस न्यायालय ने कुछ सिद्धांत निर्धारित किए हैं जिनके आधार पर उच्च न्यायालय को संहिता की धारा 482 के तहत अपने अधिकारिता का प्रयोग करना है। इस धारा के तहत अधिकारिता का प्रयोग किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जाना है।"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

वह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि याचिकाकर्ता पर धारा 37 भा. दं. सं. की सहायता से धारा 167 और 189 के तहत प्रकरण नहीं चलाया जा सकता। वह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि मध्य प्रदेश लोकायुक्त और उप-लोकायुक्त अधिनियम की धारा 15 के तहत, याचिकाकर्ता उस अधिनियम के तहत सद्भावना से किए गए या किए जाने के लिए आशयित किसी भी कार्य के लिए संरक्षित है।

8. उत्तरवादी क्रमांक 2 (राज्य) के अधिवक्ता ने न्यायालय की सहायता की है। उत्तरवादी क्रमांक 4 और 5 के अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के प्रकरण का समर्थन किया है। उत्तरवादी क्रमांक 1 के अधिवक्ता तर्क प्रस्तुत करते हैं कि वर्तमान याचिका अपने वर्तमान स्वरूप में पोषणीय नहीं है क्योंकि विद्वान मजिस्ट्रेट पहले ही प्रकरण को देख रहे हैं और उन्होंने केवल संज्ञान लिया है। वह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि याचिकाकर्ता को मजिस्ट्रेट के समक्ष अपना पक्ष रखने का पर्याप्त अवसर मिलेगा। वह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि याचिकाकर्ता ने मजिस्ट्रेट के समक्ष अपनी उपस्थिति से बचने के लिए यह याचिका दायर की है। वह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि अपराध के पंजीकरण के खिलाफ पुनरीक्षण

याचिकाकर्ता द्वारा दायर किया गया था और एक बार जब इसे खारिज कर दिया गया, तो याचिकाकर्ता ने इसे किसी उच्च मंच के समक्ष चुनौती नहीं दी है और इसलिए उसे वर्तमान याचिका दायर करने से रोका गया है। वह आगे तर्क प्रस्तुत करते हैं कि मजिस्ट्रेट के आदेश में कोई अवैधता या विकृति नहीं है, और इसलिए इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता।

9. जहाँ तक याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए पहले बिंदु का संबंध है कि यदि संपूर्ण प्रकरण को उसके इस स्वरूप में लिया जाए तो भी याचिकाकर्ता पर धारा 167 और 189 भा. दं. सं. के तहत प्रकरण नहीं चलाया जा सकता, उत्तरवादी क्रमांक 1 के अधिवक्ता तर्क प्रस्तुत करते हैं कि परिवाद से यह पता चलता है कि लकड़ी का मूल्यांकन और माप, जिसका कथित तौर पर परिवादी द्वारा घर के निर्माण में उपयोग किया गया था, गलत तरीके से किया गया है, और इसका सही माप और मूल्यांकन विवेचना के समय पुलिस अधिकारी को दिया गया था, लेकिन फिर भी इसे अनदेखा करते हुए वर्तमान याचिकाकर्ता ने परिवादी पर प्रकरण चलाने के लिए मंजूरी दी, और इस प्रकार याचिकाकर्ता ने धारा 167 और 189 के अपराध किए है यदि शिकायत में याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोप पर विचार किया जाए, तो वह शिकायत के पैरा-8 में पाया जा सकता है, जिसमें कहा गया है कि कार्यालय प्रमुख होने के नाते उनकी जिम्मेदारी निष्पक्ष और विधिक विवेचना की थी, और अभिलेख पर उपलब्ध दस्तावेजों की सूक्ष्म विवेचना के बाद आरोप पत्र दाखिल करने की अनुमति देना था, लेकिन उन्होंने ऐसा न करके और आवश्यक कार्रवाई न करके खुद को साजिश में शामिल कर लिया और इस प्रकार परिवादी की संपत्ति और प्रतिष्ठा को नुकसान पहुंचाया, जिससे उन्हें वर्षों तक मानसिक पीड़ा हुई। हालाँकि, यह आरोप याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाया गया है, लेकिन अभिलेख पर ऐसा कोई आधार नहीं है जिसके आधार पर इस आरोप को सिद्ध किया जा सके। ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान याचिकाकर्ता को झूठे प्रकरण में फंसाने के लिए ही इस प्रकार का आरोप लगाया गया है। यदि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 200 के तहत परिवादी और उसके गवाहों के कथन पर विचार किया जाता है, तो परिवाद के पैरा-7 के अनुसार, डी.एफ.ओ. द्वारा प्रस्तुत सही मूल्यांकन रिपोर्ट पुलिस महानिदेशक को अग्रेषित की गई थी और पूरी कार्यवाही उनके संज्ञान में थी और चालान दाखिल करने की अनुमति देते समय उन दस्तावेजों को नजरअंदाज कर दिया गया था, और इसलिए, यह कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ता भी साजिश में शामिल थे। भले ही इस कथन को को उसके इस स्वरूप में लिया जाए, इस आरोप को सिद्ध करने के लिए अभिलेख पर फिर भी कोई सबूत उपलब्ध नहीं है। केवल कोरे आरोप के आधार पर किसी व्यक्ति को कई वर्षों तक प्रकरण का

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

सामना करने के लिए न्यायालय में नहीं घसीटा जा सकता और उसके परिणाम की प्रतीक्षा नहीं कराई जा सकती। इस प्रकार, मुझे याचिकाकर्ता के तर्क में पर्याप्त बल मिलता है कि यदि अभियोजन पक्ष के पूरे प्रकरण को जैसा है को उसके इस स्वरूप में लिया जाए, तो भी याचिकाकर्ता के खिलाफ प्रथम दृष्टया कोई प्रकरण नहीं बनता है। सर्वोच्च न्यायालय ने **स्टेट ऑफ हरियाणा और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य** (पूर्वोक्त) के प्रकरण में स्थिति बहुत स्पष्ट कर दी है, जो इस प्रकार है :-

> "102. संहिता के अध्याय XIV के तहत विभिन्न सुसंगत प्रावधानों की व्याख्या और इस न्यायालय द्वारा निर्णयों की एक श्रृंखला में प्रतिपादित विधि के सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में, जो संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति या संहिता की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग से संबंधित हैं, जिन्हें हमने ऊपर उद्धृत और पुन: प्रस्तुत किया है, हम उदाहरण के रूप में प्रकरण की निम्नलिखित श्रेणियां देते हैं जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग या तो किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है, हालाँकि कोई सटीक, स्पष्ट रूप से परिभाषित और पर्याप्त रूप से संकेंद्रित और अनम्य दिशानिर्देश या कठोर सूत्र निर्धारित करना और उन असंख्य प्रकार के प्रकरण की एक विस्तृत सूची देना संभव नहीं हो सकता है, जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।
>
> (1) जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप , भले ही उन्हें जैसा है वैसा ही मान लिया जाए और पूरी तरह से स्वीकार किया जाए, तो भी प्रथम दृष्टया किसी अपराध का गठन नहीं करते या आरोप के खिलाफ कोई प्रकरण नहीं बनाते।
>
> (2) जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट और अन्य साक्ष्य, यदि कोई हो, प्रथम सूचना रिपोर्ट के साथ संलग्न है, एक असंज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करती है, जो संहिता की धारा 156(1) के तहत पुलिस अधिकारी द्वारा विवेचना को उचित ठहराती हो, सिवाय संहिता की धारा 155(2) के दायरे में मजिस्ट्रेट के आदेश के तहत।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(3) जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए निर्विवाद आरोप और उसके समर्थन में एकत्र किए गए सबूत किसी अपराध के गठन का खुलासा नहीं करते और आरोप के खिलाफ कोई प्रकरण नहीं बनाते।

(4) जहाँ, प्रथम सूचना रिपोर्ट में आरोप एक संज्ञेय अपराध का गठन नहीं करते हैं, बल्कि केवल एक असंज्ञेय अपराध का गठन करते हैं, कोई विवेचना पुलिस अधिकारी द्वारा मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना अनुमत नहीं है, जैसा कि संहिता की धारा 155(2) के तहत विचारित है।

(5) जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं कि जिसके आधार पर कोई भी समझदार व्यक्ति कभी भी इस न्यायसंगत निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकता कि आरोप के खिलाफ आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(6) जहाँ संहिता के किसी भी प्रावधान या संबंधित अधिनियम (जिसके तहत दाण्डिक कार्यवाही शुरू की जाती है) में दाण्डिक कार्यवाही की संस्था और निरंतरता के लिए एक स्पष्ट विधिक रोक लगाई गई है और/या जहाँ संहिता या संबंधित अधिनियम में एक विशिष्ट प्रावधान है, जो पीड़ित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावी निवारण प्रदान करता है।

(7) जहाँ दाण्डिक कार्यवाही स्पष्ट रूप से दुर्भावनापूर्ण है और/या जहाँ कार्यवाही प्रतिशोध लेने के आशय से और निजी द्वेष के कारण आरोप को परेशान करने की दृष्टि से दुर्भावनापूर्ण तरीके से शुरू की गई है।"

- इस प्रकार, यदि विचाराधीन प्रकरण के तथ्यों को ध्यान में रखा जाए, तो यह कहा जा सकता है कि यह सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णय के उदाहरण 1, 3 और 7 के तहत पूरी तरह से आच्छादित होता है। इसके अलावा, चुनौती दिए गए आदेश द्वारा न्यायालय ने याचिकाकर्ता के खिलाफ धारा 167 और 189 भा. दं. सं. के तहत संज्ञान लिया है। धारा 167 और इसके आवश्यक तत्व हैं :-

"लोक सेवक जो क्षति कारित करने के आशय से अशुद्ध दस्तावेज रचता है - जो लोक सेवक होते हुए और ऐसे लोक सेवक के नाते [किसी दस्तावेज या इलेक्ट्रानिक अभिलेख की रचना या अनुवाद करने का भार -वहन करते हुए उस दस्तावेज या इलेक्ट्रानिक अभिलेख की रचना, तैयार या अनुवाद] ऐसे

प्रकार से जिसे वह जानता हो या विश्वास करता हो की असुद्ध है इस आशय से या सम्भाबय जानते हुए करेगा कि तदद्वारा वह किसी व्यक्ति को क्षति कारित करे , वह दोनों में से किसी भांति के करावास से, जिसकी अवधि तीन तक की हो सकेगी या जुर्माने से ,या दोनों से, दण्डित किया जावेगा।"

क) घटना की तारीख को आरोप लोक सेवक था।

ख) आरोप पर किसी दस्तावेज़ को तैयार करने या अनुवाद करने का प्रभार था।

ग) संबंधित लोक सेवक ने वास्तव में दस्तावेज़ को गलत तरीके से बनाया या अनुवाद किया, यह जानते हुए या विश्वास करते हुए कि वह गलत है।

घ) यह साबित होना चाहिए कि संबंधित लोक सेवक का इरादा अपने उपरोक्त निर्माण या दस्तावेज़ के अनुवाद से किसी व्यक्ति को चोट पहुँचाना था।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

इसी प्रकार धारा 189 और इसके आवश्यक तत्व हैं:

" लोक सेवक को क्षति करने की धमकी - जो कोई किसी लोक सेवक को या ऐसे किसी व्यक्ति को जिससे उस लोक सेवक के हितबद्ध होने का उसे विश्वास हो, इस प्रयोजन से क्षति की कोई धमकी देगा कि उस लोक सेवक को उत्प्रेरित किया जाये कि वह ऐसे लोक सेवक के कृत्यो के प्रयोग से संसक्त कोई कार्य करे, या करने से प्रविरत रहे , या करने में विलम्ब करे , वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से , जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी , या जुर्माने से , या दोनों से दण्डित किया जावेगा।

क) आरोप द्वारा चोट पहुँचाने की धमकी दी गई होगी।

ख) धमकी दिया गया व्यक्ति एक लोक सेवक था या कोई अन्य व्यक्ति जिसमें आरोप का विश्वास था, उस लोक सेवक की रुचि थी।

ग) धमकी का उद्देश्य लोक सेवक को उसके लोक कार्यों के प्रयोग से जुड़े किसी भी कार्य को करने, या करने से परहेज करने, या उसमें देरी करने के लिए प्रेरित करना था।

इसके अलावा, धारा 34 भा. दं. सं. के तहत अपराध के आवश्यक तत्व हैं:

क) कि दाण्डिक कार्य एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा किया गया था।

ख) कि उक्त कार्य सभी के एक ही इरादे (common intention) को आगे बढ़ाने में किया गया था।

ग) फिर, ऐसे प्रत्येक व्यक्ति किए गए कार्य के लिए उत्तरदायी है।

घ) ऐसे प्रत्येक व्यक्ति की देनदारी उसी तरीके से होगी जैसे कि कार्य केवल उसी ने किया हो।

यदि के उपरोक्त प्रावधानों को शिकायत और गवाहों के कथन के साथ ध्यान में रखा जाए, तो यह स्पष्ट है कि उनके तत्व विचाराधीन प्रकरण पर आकर्षित नहीं होते हैं।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

10. एक और बिंदु जो याचिकाकर्ता द्वारा इस प्रकरण में उठाया गया है, वह यह है कि यह आरोप कि यह वही थे जिसने मंजूरी दी थी, वह भी गलत है क्योंकि परिवादी /उत्तरवादी क्रमांक 1 के प्रकरण में मंजूरी उनके द्वारा नहीं दी गई थी क्योंकि इसकी आवश्यकता नहीं थी क्योंकि उत्तरवादी क्रमांक 1 सेवानिवृत्त कर्मचारी थे। याचिकाकर्ता की नोट शीट से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित नोट के साथ लोकायुक्त को प्रकरण अग्रेषित किया था:

"कृपया देखें और याद करें कि आरोपी ने प्रकरण को रद्द कराने के लिए माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष भी एक याचिका दायर की है। विवेचना के लिए प्रकरण को देखना पसंद कर सकते हैं और सहमत हैं कि यदि प्रकरण ऊपर बताए अनुसार बनता है, तो अभियोजन सीधे शुरू किया जाना चाहिए, क्योंकि एक सेवानिवृत्त सरकारी सेवक के प्रकरण में किसी मंजूरी की आवश्यकता नहीं है।"

माननीय लोकायुक्त, म.प्र.

एस.पी. डंगवाल/महानिदेशक

उक्त नोट शीट से यह भी स्पष्ट है कि उत्तरवादीक्रमांक 1 के खिलाफ चालान दाखिल करने का निर्णय लेने से पहले, तत्कालीन लोकायुक्त ने एक डब्ल्यू.ए. शाह से भी राय ली थी, जो इस प्रकार है:

> 4 अतः समस्त परिस्थितियों एवं साक्ष्य के आधार पर मेरा मत है कि यह प्रकरण उपरोक्त अनुसंशा अनुसार न्यायालय में पेश किये जाने योग्य है
>
> 5 कृपया अनुमोदनार्थ / आदेशार्थ प्रस्तुत है

इसके बाद यह लोकायुक्त ही थे जिन्होंने अंततः चालान दाखिल करने की अनुमति दी। इसका पुनर्कथन इस प्रकार है :-

> *"श्री शाह की राय और प्रकरण में मेरे अपने निर्णय को ध्यान में रखते हुए, प्रस्तावित चालान प्रस्तुत किया जा सकता है।"*

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि उपरोक्त नोट शीट याचिकाकर्ता के लिए बचाव का प्रकरण हो सकती है, लेकिन जब ये दो नोट शीट इस न्यायालय के समक्ष लाई जाती हैं और किसी भी पक्ष द्वारा विवादित नहीं हैं, तो यह न्यायालय इस नोटशीट की सहायता ले सकता है ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता ने उत्तरवादियों के प्रकरण में शायद ही कोई भूमिका निभाई हो। सभी दस्तावेज उनके अधीनस्थ अधिकारी द्वारा अग्रेषित किए गए थे और बदले में पूरी फाइल लोकायुक्त के समक्ष प्रस्तुत की गई थी, जिन्होंने अंततः निर्णय लेने के बाद मंजूरी दी। यहाँ फिर से कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोप बिल्कुल निराधार हैं और उनका कोई आधार नहीं है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

11. जहाँ तक मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के आदेश (अनुलग्नक पी -3) का संबंध है, यद्यपि उक्त न्यायालय ने उत्तरवादी क्रमांक 1 की याचिका स्वीकार कर ली थी, परंतु उसने उस प्रकरण के गुण-दोष पर कोई निष्कर्ष नहीं दिया, जिसमें उसके विरुद्ध चालान प्रस्तुत किया गया था। मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने उत्तरवादी क्रमांक 1 की याचिका केवल तकनीकी आधार पर स्वीकार की, जो इस प्रकार है:

> 27. "जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने पहले उद्धृत दो निर्णयों— ***भजनलाल प्रकरण (AIR 1992 SC 604)*** **और** ***रिशबुद*** *प्रकरण* —तथा इस न्यायालय और इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निर्णयों में कहा है, वर्तमान विवेचना अवैध और

अनधिकृत थी। इसलिए, इस विवेचना के परिणाम के आधार पर दायर की गई धारा 173 दंप्रसं की चालान भी अनधिकृत थी, या दूसरे शब्दों में कहा जाए तो इस प्रकार की की गई विवेचना धारा 173 दंप्रसं के तहत पुलिस रिपोर्ट का आधार नहीं बन सकती, जैसा कि वर्तमान प्रकरण में हुआ है। अतः परिणामतः विवेचना और रिपोर्ट को इस न्यायालय द्वारा निरस्त किया जाना चाहिए। इन्हें इसी प्रकार निरस्त किया जाता है, परंतु साथ ही यह भी स्पष्ट किया जाता है कि यह आदेश सक्षम प्राधिकारी को विधिपूर्ण आदेश के तहत पुनः विवेचना प्रारम्भ करने, परिणाम तक पहुँचने और आवश्यकता होने पर चालान प्रस्तुत करने से नहीं रोकेगा।

28. इन टिप्पणियों के साथ यह याचिका स्वीकार की जाती है और इस स्तर पर अभियोजन को निरस्त किया जाता है। लेकिन, इस न्यायालय द्वारा वर्तमान प्रकरण में प्रथम सूचना रिपोर्ट को निरस्त नहीं किया जा रहा है।"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

12. याचिकाकर्ता इस परिवाद प्रकरण में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के आदेश का लाभ नहीं ले सकता क्योंकि दोनों प्रकरण की प्रकृति पूर्णतः भिन्न है और वे अलग-अलग आधार पर खड़े हैं। इसके अतिरिक्त, राज्य के अधिवक्ता द्वारा दी गई जानकारी के अनुसार, छत्तीसगढ़ राज्य भी उत्तरवादी क्रमांक 1 के विरुद्ध आरोप -पत्र दाखिल करने के संबंध में विचाराधीन है।

13. अब उत्तरवादी क्रमांक 1 द्वारा किए गए इस निवेदन पर आते हैं कि याचिकाकर्ता का पुनरीक्षण 27.11.2007 (परिशिष्ट पी-7) के आदेश द्वारा अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा अपराध पंजीकरण के विरुद्ध खारिज कर दिया गया था। उक्त आदेश से स्पष्ट है कि पुनरीक्षण केवल विलंब के आधार पर खारिज किया गया था, क्योंकि मजिस्ट्रेट ने 11.10.2004 को अपराध दर्ज करने का निर्देश दिया था, जबकि पुनरीक्षण लगभग एक वर्ष दस महीने बाद दायर किया गया। जब पुनरीक्षण न्यायालय ने प्रकरण के गुण-दोष पर कोई निष्कर्ष नहीं दिया, तो यह नहीं कहा जा सकता कि वर्तमान याचिका पोषणीय (maintainable) नहीं है। ***कृष्णन एवं अन्य बनाम कृष्णादेवी एवं अन्य*** **[(1997) 4 SCC 241]** के प्रकरण में उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :-

6. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 प्रत्येक उच्च न्यायालय को पुनरीक्षण की शक्ति प्रदान करती है। उक्त धारा की उपधारा (1) के अनुसार, किसी भी कार्यवाही में—जिसका अभिलेख उच्च न्यायालय ने

स्वयं मंगाया हो या जो अन्यथा उसकी जानकारी में आया हो—उच्च न्यायालय अपने विवेकानुसार, धारा 386, 389 और 391 के अंतर्गत अपीलीय न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों का तथा धारा 307 के तहत सत्र न्यायालय को प्राप्त शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। धारा 397(1) में दिए गए प्रत्यक्ष अधिकार के अतिरिक्त, उच्च न्यायालय को धारा 401 के तहत स्व प्रेरणा से पुनरीक्षण की शक्ति भी प्रदान की गई है। इसके अतिरिक्त, धारा 482 उच्च न्यायालय की निहित शक्तियों को सुरक्षित रखते हुए यह उपबंध करती है कि :

> *"इस संहिता में ऐसा कुछ भी नहीं होगा जिससे उच्च न्यायालय की उन निहित शक्तियों को सीमित या प्रभावित समझा जाए जो इस संहिता के अंतर्गत किसी आदेश को प्रभावी करने, न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने अथवा न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक हों।"*

धारा 483 प्रत्येक उच्च न्यायालय पर यह दायित्व अधिरोपित है कि वह अपने अधीनस्थ न्यायिक मजिस्ट्रेटों की सतत पर्यवेक्षण (continuous superintendence) इस प्रकार करे कि उनके द्वारा प्रकरण का त्वरित और विधिसम्मत निपटारा सुनिश्चित हो। अतः यह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय की सतत पर्यवेक्षणीय शक्ति अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिससे किसी भी अधीनस्थ दाण्डिक न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्ष, दंड या आदेश की शुद्धता, वैधता, उपयुक्तता तथा कार्यवाही की नियमितता की विवेचना की जा सके।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

7. यह देखा गया है कि उच्च न्यायालय द्वारा धारा 397 तथा धारा 401 के साथ संयुक्त रूप से प्रयोग की जाने वाली पुनरीक्षण शक्ति का उद्देश्य किसी भी अधीनस्थ दाण्डिक न्यायालय का अभिलेख मंगवाकर यह जाँचना है कि उसके किसी निष्कर्ष, दंड या आदेश की शुद्धता, वैधता या औचित्य क्या है, तथा उसकी कार्यवाही में कोई अनियमितता तो नहीं है, और तदनुसार उचित आदेश पारित करना। सत्र न्यायालय तथा मजिस्ट्रेट उच्च न्यायालय के अधीनस्थ दाण्डिक न्यायालय हैं, और न्यायिक मजिस्ट्रेट सत्र न्यायाधीश के अधीन अधीनस्थ दाण्डिक न्यायालय माने जाते हैं। सामान्यतः, किसी भी उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण शक्ति का प्रयोग करते समय धारा 397 और धारा 401 को साथ-साथ पढ़ा जाता है।

धारा 397 उच्च न्यायालय को अभिलेख मंगाने की शक्ति देती है तथा धारा 401 के तहत स्वतःपुनरीक्षण की शक्ति प्रदान करती है, ताकि वह यह विवेचना कर सके कि

किसी निष्कर्ष, दंड या आदेश की शुद्धता या वैधता क्या है, तथा कार्यवाही की नियमितता कैसी है, और तदनुसार धारा 401 के अनुसार पुनरीक्षण का निराकरण कर सके। न्यायालय का यह दायित्व है कि न्याय दाण्डिक न्यायशास्त्र की मान्य विधियों के अनुसार किया जाए, तथा उसके अधीनस्थ न्यायालय अपनी अधिकार सीमा से बाहर न जाएँ या उन्हें प्रदत्त शक्तियों का दुरुपयोग न करें।

8. धारा 483 का उद्देश्य तथा धारा 397 एवं 401 का उद्देश्य यह है कि उच्च न्यायालय को निरंतर पर्यवेक्षणीय अधिकार प्रदान किया जाए, ताकि न्याय का हनन रोका जा सके, प्रक्रिया में हुई अनियमितता सुधारी जा सके, अथवा न्याय प्रदान किया जा सके। इसके अतिरिक्त, धारा 482 द्वारा उच्च न्यायालय की निहित शक्तियों को भी सुरक्षित किया गया है। अतः उच्च न्यायालय की शक्ति अत्यंत व्यापक है। तथापि, जब सत्र न्यायाधीश द्वारा धारा 397(1) के अंतर्गत पुनरीक्षण शक्ति का प्रयोग किया जा चुका हो, तो उच्च न्यायालय को अपनी शक्ति सावधानीपूर्वक और सीमित रूप से प्रयोग करनी चाहिए।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

लेकिन यदि उच्च न्यायालय यह पाता है कि न्याय का हनन हुआ है, न्यायिक प्रक्रिया या व्यवस्था का दुरुपयोग हुआ है, दंड या आदेश गलत है, या अधीनस्थ न्यायालय द्वारा कार्यवाही में अनियमितता/त्रुटि/अवैधता हुई है—तो उसे हस्तक्षेप कर त्रुटि को सुधारना आवश्यक हो जाता है।

10. सामान्यतः, जब धारा 397(3) के तहत पुनरीक्षण पर प्रतिबंध लगा दिया गया हो, तब किसी आरोप /परिवादी को यह अनुमति नहीं दी जा सकती कि वह धारा 397(1) के तहत उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण प्रस्तुत करे या धारा 482 की निहित शक्तियों का सहारा ले, क्योंकि इससे धारा 397(3) अथवा धारा 397(2) का परिहार होगा।

हालाँकि, उच्च न्यायालय के पास धारा 401 के तहत स्वप्रेरणा स्वतः शक्ति तथा धारा 483 के तहत निरंतर पर्यवेक्षणीय अधिकार मौजूद है। अतः यदि उच्च न्यायालय अभिलेखों के परीक्षण पर यह पाता है कि न्याय का गंभीर हनन हुआ है, न्यायालयों की प्रक्रिया का दुरुपयोग हुआ है, वैधानिक प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है, या मजिस्ट्रेट द्वारा दिया गया आदेश/दंड सुधार योग्य है—तो उच्च न्यायालय का कर्तव्य है कि वह प्रारंभिक स्तर पर ही हस्तक्षेप करके त्रुटि को सुधार दे, ताकि न्याय का गंभीर

हनन न होने पाए।

इसलिए, न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति या प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने हेतु उच्च न्यायालय अपनी निहित शक्तियों का प्रयोग करने के लिए सक्षम एवं उचित है, और उपयुक्त प्रकरण में धारा 397(1) तथा 401 के तहत पुनरीक्षण शक्ति का प्रयोग भी कर सकता है। जैसा पहले कहा गया है, इसका प्रयोग संयमपूर्वक किया जाना चाहिए ताकि अनावश्यक प्रक्रियाएँ न बढ़ें, प्रकरण में अनावश्यक विलंब न हो, और कार्यवाही लम्बी न खिंचे।

दाण्डिक प्रकरण का उद्देश्य है—सार्वजनिक न्याय सुनिश्चित करना, अपराधी को दंडित करना, और यह देखना कि प्रकरण का निपटारा शीघ्र हो, ताकि गवाहों की स्मृति क्षीण होने से पहले सत्य सामने आ सके। वर्तमान प्रवृत्ति यह है कि प्रकरण में देरी की जाती है, गवाहों को धमकाया जाता है या प्रलोभन देकर अपने पक्ष में किया जाता है। इन दुष्प्रवृत्तियों को रोकना आवश्यक है, और सार्वजनिक न्याय तभी सुनिश्चित होगा जब प्रकरण शीघ्रता से संचालित किए जाएँ।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

14. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, हम यह मानते हैं कि यद्यपि धारा 397 की उपधारा (1) के तहत उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण पर उपधारा (3) द्वारा प्रतिबंध लगाया गया है, फिर भी धारा 482 के अंतर्गत उच्च न्यायालय की निहित शक्तियाँ उपलब्ध रहती हैं, और धारा 483 के तहत उच्च न्यायालय की निरंतर पर्यवेक्षण की सर्वोपरि शक्ति के कारण, न्याय के हनन की स्थिति में उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करना तथाअधीनस्थ न्यायालयों के आदेश को निरस्त करना न्यायोचित है। उच्च न्यायालय ने प्रकरण को साक्ष्यों पर विचार करते हुए गुण-दोष के आधार पर निर्णय हेतु मजिस्ट्रेट को प्रतिप्रेषित कर दिया। हम स्पष्ट कर देते हैं कि हमने प्रकरण के गुण-दोष में कोई विचार नहीं किया है। चूँकि उच्च न्यायालय ने प्रकरण को मजिस्ट्रेट द्वारा विचारार्थ छोड़ा है, इसलिए इस चरण पर उस प्रश्न पर विचार करना उपयुक्त नहीं होगा। हमने केवल धारा 397(1) को धारा 397(3) के साथ पढ़ते हुए पुनरीक्षण शक्ति तथा निहित शक्तियों के संदर्भ में उच्च न्यायालय की शक्ति और उसके उपयोग की न्यायोचितता पर विचार किया है। हमें अपील में हस्तक्षेप का कोई कारण नहीं दिखता।

शकुंतला देवी एवं अन्य बनाम चमरू महतो एवं अन्य (2009) 3 SCC 310

उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार कहा है:

यह सुस्थापित है कि धारा 397 में उपधारा (3) जोड़ने का उद्देश्य दूसरी बार पुनरीक्षण दायर करने पर रोक लगाना था ताकि निरर्थक मुकदमे बाज़ी को रोका जा सके। परंतु, साथ ही, सत्र न्यायाधीश के समक्ष हार चुके पक्षकारों के लिए उच्च न्यायालय के द्वार पूर्णतः बंद नहीं किए गए थे, और विशेष परिस्थितियों में धारा 397(3) के प्रतिबंध को हटाया जा सकता था। दूसरे शब्दों में, धारा 482 के अंतर्गत याचिका दायर करने की उच्च न्यायालय की शक्ति धारा 397(3) के प्रतिबंध के अधीन नहीं थी, और उपयुक्त प्रकरण में इसका प्रयोग किया जा सकता था। अतः श्री सन्याल का यह तर्क कि धारा 397(3) के तहत पूर्ण प्रतिबंध उच्च न्यायालय को धारा 482 के तहत याचिका सुनने से रोकता है—स्वीकार्य नहीं है।

सोम मित्तल बनाम भारत सरकार (2008) 3 SCC 753 में

उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है :-

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

9. इस चरण पर हम पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत तर्कों के आधार पर प्रकरण के गुण-दोष में नहीं जाना चाहते। हमारे कारण इस प्रकार हैं: एक श्रृंखला के निर्णयों में इस न्यायालय ने धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय द्वारा निहित शक्तियों के नियमित और अनियमित प्रयोग पर असंतोष व्यक्त किया है। लगातार यह कहा गया है कि धारा 482 की शक्ति का प्रयोग संयम, सावधानी और अत्यंत दुर्लभ प्रकरण में ही किया जाना चाहिए। धारा 482 के अंतर्गत निहित शक्ति का प्रयोग नियम नहीं बल्कि अपवाद है। यह अपवाद तभी लागू होता है जब न्यायालय के संज्ञान में यह लाया जाए कि यदि प्रकरण आगे बढ़ने दिया गया तो गंभीर न्याय हनन होगा—जहाँ आरोप को अनावश्यक रूप से प्रताड़ित होना पड़ेगा, या जहाँ प्रथम दृष्टया प्रतीत होता है कि प्रकरण अंततः दोषमुक्त होने पर समाप्त होगा।
दूसरे शब्दों में, धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की निहित शक्ति का उपयोग या तो न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या न्यायिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया जा सकता है।

18. हम यह उल्लेख करना आवश्यक समझते हैं कि यद्यपि इस न्यायालय ने लगातार निर्णयों में कहा है कि उच्च न्यायालय की निहित शक्तियों का प्रयोग मनमानी या

इच्छानुसार नहीं होना चाहिए तथा अत्यंत दुर्लभ प्रकरण में सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए, फिर भी अनेक प्रकरण में यह देखा गया है कि उच्च न्यायालय धारा 482 के तहत निहित शक्तियों का उपयोग मनमाने ढंग से करते हुए प्रारंभिक स्तर पर ही संज्ञान और प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द कर देता है, जिससे गंभीर न्याय हनन होता है।

यह सही है कि जब तक धारा 482 विधि में विद्यमान है, उसका प्रयोग निषिद्ध नहीं है, परंतु यह भी ध्यान रखना चाहिए कि इसका प्रयोग अत्यंत संयम और सावधानी के साथ केवल दुर्लभतम प्रकरण में होना चाहिए, और इसका एकमात्र उद्देश्य न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति होना चाहिए। धारा 482 की शक्ति का उद्देश्य प्रारंभिक स्तर पर न्याय प्रक्रिया को विफल करना नहीं है।

सोम मित्तल बनाम भारत सरकार (2008) 3 SCC 574 में

उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है :-

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

जब धारा 482 के दायरे का वर्णन करते समय "संयमपूर्वक एवं सावधानी से" शब्दों के बाद "विरल से विरल मामलो मंे शब्दों का प्रयोग किया जाता है, तो इन शब्दों का उद्देश्य केवल यह रेखांकित और दोहराना होता है कि धारा 482 के अंतर्गत कार्यवाही को रद्द करने की शक्ति का प्रयोग न तो यांत्रिक रूप से और न ही नियमित रूप से किया जाना चाहिए, बल्कि इसे सावधानी और विवेक के साथ केवल उन्हीं प्रकरण में प्रयोग किया जाना चाहिए, जहाँ कार्यवाही को रद्द करने का स्पष्ट आधार मौजूद हो और हस्तक्षेप न करने से न्याय का गंभीर क्षति होना तय हो।

विरल से विरल मामलो की अभिव्यक्ति का अर्थ वह नहीं है जो धारा 302 भारतीय दंड संहिता के तहत दंड निर्धारण में प्रयोग होता है, बल्कि इसका उद्देश्य यह बताना है कि धारा 482 के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट या दाण्डिक कार्यवाही को रद्द करने की शक्ति का प्रयोग बहुत कम और सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए।

निर्णयों को विधाओं की तरह नहीं पढ़ा जाना चाहिए। किसी निर्णय में प्रयुक्त शब्दों को वैधानिक प्रावधानों की तरह नहीं समझा जाना चाहिए। अनेक बार न्यायाधीश किसी वाक्यांश का प्रयोग सिर्फ़ किसी सिद्धांत को स्पष्ट करने या किसी बिंदु पर बल देने के लिए करते हैं। न्यायिक निर्णय के विनिश्चय का आधार किसी एक शब्द या वाक्यांश को

अलग से पढ़कर नहीं निकाला जा सकता।

वसुदेव दानी बनाम पुरुषोत्तम दास खंडेलवाल एवं अन्य (2004) 13 SCC 506 में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता के प्रकरण पर गुण-दोष पर विचार नहीं किया। धारा 482 दंप्रसं के तहत दायर याचिका केवल इस आधार पर खारिज कर दी गई कि सह-आरोप द्वारा उसी आदेश के विरुद्ध दायर याचिका खारिज हो चुकी थी।

हमारे विचार में, यह उचित और न्यायसंगत है कि उच्च न्यायालय, दोनों पक्षों को सुनने के बाद, अपीलकर्ता द्वारा धारा 482 दंप्रसं के तहत दायर याचिका का उसके गुण-दोष के आधार पर निर्णय करे। दोनों पक्षों के सभी तर्कों को जिनमें याचिका की पोषणीयता भी शामिल है, उच्च न्यायालय के समक्ष उठाई जा सकती हैं।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

आईशर ट्रैक्टर लिमिटेड एवं अन्य बनाम हरिहर सिंह एवं अन्य (2008) 16 SCC 763 में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया :-

यह प्रकरण भजनलाल प्रकरण की श्रेणी (7) में पूरी तरह आता है। ऊपर वर्णित तथ्यों से स्पष्ट है कि कार्यवाही, अपीलकर्ताओं द्वारा प्रारंभ की गई कार्यवाही के प्रतिशोध में शुरू की गई थी। ऐसी कार्यवाही को जारी रखना विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा। अतः कार्यवाही रद्द की जाती है।

14. मुझे उत्तरवादी क्रमांक 1 के अधिवक्ता का तर्क सारवान नहीं लगता कि याचिकाकर्ता दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 245 के तहत आवेदन दाखिल करके मजिस्ट्रेट के समक्ष जा सकता है। अतः, प्रकरण की उपरोक्त तथ्यात्मक और विधिक स्थिति को देखते हुए, इस न्यायालय का यह मत है कि प्रथम दृष्टया याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई प्रकरण नहीं बनता और ऐसी स्थिति में याचिकाकर्ता को अनावश्यक प्रकरणबाजी में घसीटना, जो कि विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा, उचित नहीं है। अतः यह याचिका स्वीकार की जाती है और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, रायपुर के समक्ष लंबित परिवाद *प्रकरण क्रमांक 1304/2004* में याचिकाकर्ता से संबंधित दाण्डिक कार्यवाही को तत्काल प्रभाव से रद्द किया जाता है।

सही/-

प्रीतिंकर दिवाकर

न्यायाधीश

अस्वीकरण: हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयीन एवं व्यवहारिक प्रयोजनों हेतु **निर्णय का अंग्रेजी स्वरुप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।**

Translated By Vijay laxmi Pradhan

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur